ड) तुलसी और संत संप्रदाय ।

(४) तुलसी और सन्त संभाषण

तुलसीदासजी मर्यादावादी समाज-सुधारक सन्त थे। वे एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे, जिसमें सभी लोग वैदिक धर्म के अनुयायी हों। वर्णाश्रम धर्म का पालन करनेवाले हों, सज्जन हों और रामभक्त हों। इसीलिए उन्होंने इस संवाद में सन्त एवं असन्तों के लक्षणों का वर्णन करके यह समझाया है कि मानव को अधिक से अधिक सन्तों के गुण धारण करके सज्जन बनना चाहिए और असन्तों के अवगुणों का त्याग कर देना चाहिए।

तुलसी और संत संवाद वैसे देखा जाय तो `रामचरितमानस` के अनुक्रम में पहले ही निर्देश में आया है, लेकिन उसे हम अंत में देख रहे हैं। तुलसी और संत में वैसे देखा जाय तो बातचीत या संभाषण कहीं भी नहीं म मिलता फिर भी यहाँ तुलसीदासजी ने वक्ता का काम किया है और संत या सज्जनलोगों ने श्रोता का काम किया है। तुलसी ने संभाषण के द्वारा संतों की वंदना की है और असंतों की भी वंदना की है।

गोस्वामी तुलसीदास और संत संवाद `पूर्वघाट` का प्रतीक है। इसे `दीनता-घाट` भी कहते हैं। कर्म, ज्ञान, उपासनारहित अन्य उपायशून्य सब विधिहीन प्राणियों के कल्याणार्थ इस घाट की रचना हुई है।

इसप्रकार रामकथा के चौथे वक्ता तुलसीदास हैं और श्रोता सकल सज्जन हैं। ये श्रोता ज्ञान, शील और भक्ति के क्षेत्र में हीन हैं। अत: वे इस गूढ रामकथा को कैसे समझ सकते ? तुलसीदासजी इसके बारेमें कहते हैं -

> `श्रोता बकता ग्यानविधि कथा राम के गूढ।
> किमि समुझौं मैं जीव जड कलिमल ग्रसित बिमूढ ।
> तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा।
> भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई।।`[१]

गुरू के बार-बार कहने पर जिस रूप में उनकी बुध्दि ने इसे ग्रहण किया उन्होंने सब के हित के उद्देश्य से भाषाबध्द किया। तुलसी के श्रोताओं ने कोई प्रश्न नहीं पूछा, लेकिन उन्होंने अपनी बुध्दि के अनुसार रामकथा को समझाकर समाज के सामने उपस्थित प्रश्न को सामने रखकर उसका समाधान किया है। परिस्थिति के अनुसार रामकथा के जिस अंग को महत्व देने की आवश्यकता थी उन्होंने उसीपर बल दिया है। तुलसी की परिस्थिति अन्य तीनों वक्ताओं से भिन्न थी। अत: कुछ परिवर्तन आवश्यक था और इस परिवर्तन के लिए ही तुलसीदास जी स्वयं वक्ता बनकर समाज में परिवर्तन करना चाहते हैं। वे कहते हैं कि -

' सन्त हृदय नवनीत समाना कहा कविन पै कहै न जाना।
निज परिताप द्रवै नवनीता पर दु:ख द्रविहिं सन्त सुपुनीता ।।'[2]

तुलसीदासजी ने सन्त हृदय पम्पा सरोवर के जल की निर्मलता की उपमा दी है। पम्पा सरोवर का जल सन्तों के हृदय के समान निर्मल है। इस सरोवर पर चारों दिशाओं में चार घाट बनाये हैं, जो बाहर के मैल को किसी भी ओर से जल में नहीं आने देते। इस स्वच्छ जल को नाना प्रकार के मृग स्वच्छन्द होकर पी रहे हैं। जैसे किसी उदार पुरूष के घर पर याचकों की भीड लगी हो। सन्त का हृदय भी ऐसा ही निर्मल और उदार होता है। वह मद और मोह से रहित होता है। तुलसीदासजी ने सन्तों के हृदय को आम के वृक्ष की उपमा दी है।

' सन्त सभा चहुँ दिसि अमराई श्रध्दा रितु बसन्त सम गाई।'[3]

महात्मा तुलसीदासजी के समय में जो भी अच्छे गुण कहे जाते थे, वे सभी उन्होंने सन्तों मे गिनाये हैं। सन्त बिना कारण दूसरों की भलाई करनेवाले होते हैं। अत: मानव-समाज की भलाई मे नि:स्वार्थ रूप से जुडे रहनेवाले व्यक्ति के

गुणों की थाह पाना असंभव है। इसलिए तुलसीदासजी ने राम के द्वारा कहलाया है कि सरस्वती और शास्त्र भी साधुओं के कुछ गुण वर्णन करने में असमर्थ हैं।

तुलसी के सन्त के बारेमें द्वारिका प्रसाद सक्सेना कहते हैं, कि - ' सन्त सांसारिक नियम जप, तप, व्रत, संयम, आदि का पालन करते हैं। वे श्रध्दा, क्षमा, मित्रता, दया और रामकथा में रूचि रखते हैं। वे वैराग्य, विवेक, विनय और वेद पुराणों का यथार्थ ज्ञान रखते हैं। दम्भ, मान और मद उनके पास भी नहीं रहते और न ही वे बुरे मार्ग पर पग रखते हैं। इन्हीं गुणों के कारण राम को सन्त प्यारे हैं। '[४]

महात्मा तुलसीदासजी जानते थे कि संसार में सन्त और असन्त का संघर्ष है। यदि असन्त न होते तो ' रामचरितमानस ' लिखने की आवश्यकता ही नहीं पडती। ' रामचरितमानस ' के प्रारम्भ में ही जहाँ उन्होंने सन्तों की वन्दना की है वहाँ खलों की भी वन्दना की है। संसार में दोनों हैं एक प्रगति का द्योतक है, तो दूसरा पतन का। तुलसीदासजी ने राम द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि असन्तों और सन्तों के बीच किस प्रकार का आचरण होना चाहिए। सन्त और असन्त का आचरण चंदन और कुल्हाडी जैसा है। कुल्हाडी चन्दन को काट देती है फिर भी चन्दन की सुगन्ध कुल्हाडी में आ जाती है। इन दो प्रकार के व्यवहारों का परिणाम क्या होता है ? चन्दन देवताओं के गले में डालते हैं और कुल्हाडी को अग्नि में तपाकर हथौडे से पीटा जाता है। यहाँ तुलसीदासजी बताते हैं कि क्या भला है और क्या बुरा है इसकी जाँच इसी संसार में उनके परिणामों से होती है, कहीं बाहर से नहीं। इसप्रकार समाज में रहते हुए व्यक्ति का अनेक व्यक्तियों से सम्पर्क आता है। इसलिए तुलसी ने संत-असन्त सज्जन-दुर्जन की पहचान भी अपने काव्य के माध्यम से करवा दी है। संतों के चरित्र का गुणगान करते हुए वे कहते हैं -

" को बरने मुख एक तुलसी महिमा संत की ।
जिन्ह के बिमल विवेक सेष महेस न कहि सकता ।। "[५]

सन्त कोमल चित्त, दीनों पर दया करनेवाले तथा मक्त होते हैं । सब को वे आदर देते हैं । किन्तु स्वयं वे मानरहित होते हैं । राम के चरित्र का सार ही ऐसे सन्त हैं । वे कामना रहित शान्त वैराग्यपूर्ण, विनय और प्रसन्नता के घर होते हैं । वे किसी मी अवस्था में नीति विमुख नहीं होते और कमी मी कठोर अप्रिय वचन नहीं बोलते । सन्त निन्दा और स्तुति दोनों में स्थिररहते हैं ।

असन्त इसके विपरीत आचरण करते हैं । तुलसीदासजी राम के द्वारा मरत से कहते है -

" खलन्ह हृदय अति ताप विसेषी । जरहिं सदा पर संपति देखी ।
जहँ कहुँ निन्दा सुनहि पराई हरषहिंमनहुँ परी निधि पाई ।
काम, क्रोध, मद लोम परायन निदर्यच कपटी कुटिल मलायन ।
बयरू अकारन सब काहू सो जो कर हित अनहित ताहू सो ।। "[६]

सब मनुष्य चरित्रवान हो सकते हैं इसमें तुलसीदास विश्वास करते हैं । उन्होंने सन्तों और असन्तों के आचरणों का सार मी संक्षेप में बता दिया है, ताकि साधारण जनता उन्हें अपना आधार मानकर आचरण करे और फलत: सफल हो सके । तुलसीदासजी राम के द्वारा मरत से कहते हैं -

" परहित सरिस धर्म नहिं माई पर पीडा सम नहिं अध माई । "[७]

तुलसीदासजी कहते हैं स्वार्थवश मनुष्य दूसरों को दुख देता है और तरह-तरह के पाप करता है । तुलसी के राम मरत से कहते हैं कि ऐसे पापी कालाधीन हैं । राम अच्छे कर्मों का फल अच्छा ही देते हैं और बुरे कर्म का फल

बुरा देते हैं। यहाँ पर तुलसीदासजी समाज के दूरगामी परिणामों की बात कर रहे हैं। मनुष्य चोरी करके तुरन्त कुछ लाभ उठा सकता है, पर अन्ततः वह समाज को चोरी के अवगुण से दूषीत करेगा अतः उसे अच्छे परिणाम अंत तक प्राप्त नहीं होंगे। मनुष्य अपनी शोषक प्रवृत्ति के कारण दूसरों के हित का विचार किए बिना अनेक उपायों द्वारा धन एकत्र करता है। किन्तु तुलसीदासजी कहते हैं कि इसके कारण सामाजिक दुःख और विरोध को ही प्रोत्साहन मिलेगा न कि सुख और शान्ति को।

तुलसीदासजी कहते हैं कि परहित की व्यापक भावना ही मानव समाज के दुःख और विरोध का नाश करके सुख और शान्ति प्रदान कर सकती है। इसलिये तुलसी के सन्तों का सहज स्वभाव ही परोपकार बन जाता है। इसके बारेमें काकभुशुण्डि गरुड से कहते हैं -

" पर उपकार वचन मनकाया सन्त सहज सुभ खगराया। "८
सन्त सहहिं दुख पर हितलाही पर दुख हेतु असंत अभागी।
भूर्ज तरू सम सन्त कृपाला परहित नित सह बिपति बिसाला।।"८

तुलसीदासजी कहते हैं, " सन्त की संगति में रहकर दुष्ट मनुष्य सुधर जाता है। संत यदि दुष्टों के मामलों में पड भी जाते हैं, जिनको वे सुधर नहीं पाते। तब भी वे अपने गुणों का त्याग नहीं करते, जैसे सर्प के पास मणि रहती है, पर सर्प की दुष्टता का कोई कुप्रभाव उसकी मणि पर नहीं पडता। मणि के सुन्दर गुण वैसे ही बने रहते हैं।"

यह संसार गुण और दोषों का मिश्रण है। सभी गुणों और दोषों का वर्णन करना कठिन है। इसका समझाना भी कठिन है। सन्त अपनी बुध्दि से संसार में व्याप्त गुणों को निकालकर स्वयं में धारण कर लेता है और दोषों

को त्याग देता है ।

तुलसी के विचार व्यक्त करते हुए डॉ. चरण सखी शर्माजी कहती हैं, - ` तुलसी के मतानुसार नीच व्यक्ति को समझाना अति कठिन है और उसे सम्मान देना तो और भी मूर्खता है, क्योंकि सम्मान प्राप्त कर मूर्ख व्यक्ति अपने तथा दूसरों के नाश का करण बनता है । `[९]

तुलसी कहते हैं, ` दुष्टों के पाप और अवगुणों तथा साधुओं के गुणों की थाह पाना संभव नहीं है । ` तुलसीदासजी कहते हैं, ` मैंने उनमें से कुछ गुण-दोषों का ही वर्णन किया है । क्योंकि मनुष्य उन्हें जाने बगैर न धारण कर सकता है, न त्याग सकता है । इस प्रकार इस गुण बोधमय संसार में तुलसीदासजी कहते हैं कि संत रूपी हंस गुणों को अपनी ओर खींच लेते हैं और दोषों को त्याग देते हैं तभी वे सन्तों का आचरण करते हैं ।

इस प्रकार तुलसीदासजी ने व्यक्ति के सामाजिक आचरण के लिए संत, असन्त की पहचान करा दी है और संतो की महिमा द्वारा उनके सामाजिक महत्व की स्थापना की है । संतों के बारेमें उन्होंने अपने ` वैराग्य संदीपनी ` ग्रंथ में लिखा है -

` मुख दीखत पातक हरै, परुषत कर्म बिलाहि ।
बचन सुनत मन मोह गत, पुरुष मांग मिलाहि ।। `[१०]

तुलसीदासजी की दृष्टि में सन्त वही हो सकते है, जो अपना सम्पूर्ण जीवन मानव-सेवा में लगाने का कठोर व्रत लेते हैं । जिस कार्य से मानव सेवा होती है और जिससे नहीं होती इसे वे अपने ज्ञान चक्षुओं के द्वारा जानते हैं । सन्त की मानव-सेवा व्यक्तिगत सेवा नहीं है । ` उन्होंने सन्तों की वन्दना करते हुए लिखा है -

" बन्दऊँ सन्त समान चितहित अनहित नहिं कोऊ ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगन्ध कर दोउ ।। "[११]

तुलसीदासजी कहते हैं, " संत संसार के कोने-कोने को अपनी सुगन्ध से परिपूर्ण करते हैं । उनके कार्य से सारे संसार का हित होता है । "

संत मानव नाश की पावन संपत्ति है । किसी जाति, समाज, अथवा व्यक्ति विशेष से वे बंधे नहीं हैं । किसी बाह्य प्रभाव से वे पथ विचलित नहीं होते । संत स्वयं कष्ट सहकर भी दुसरों की बुराइयाँ और कष्टों को दूर करने में प्रयत्नशील रहते हैं ।

तुलसीदासजी संत के बारे में कहते हैं कि -

" सरल वरन भाषा सहल, सरल अर्थ मय मानि ।
तुलसी सरले संत जन, ताहि परी पहिचानि ।। "[१२]

तुलसीदासजी खलो या असन्तों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि - असज्जन अकारण अपना हित करनेवालों के भी खिलाफ रहते हैं । दूसरों के हित की हानि ही उनके लिये लाभ है, दूसरों के उजडने में हर्ष और बसने में विषाद होता है । दूसरों का बुरा करने के लिये वे सहस्त्रबाहु के समान योध्दा बन जाते हैं । दूसरों के दोषों को सहस्त्र नयनों से देखने की इच्छा रखते हैं । उनका क्रोध अग्नि के समान सब को भस्म कर डालनेवाला होता है । उनके अवगण ही धन है । समाज की उनको कोई चिन्ता नहीं होती । दूसरों के नाश के लिए ओले के समान अपना शरीर त्याग सकते हैं । ओला पृथ्वीपर गिरकर खेती को नष्ट करके स्वयं भी गल जाता है । खल अपने मुख से दुसरों के दोषों का बखान करते हैं । यद्यपि सारे दोष उन्हीं में ही हैं जिन्हें वे नहीं देखते । तुलसी का मत है कि सज्जन और दुर्जन दोनों ही अपनी प्रकृति को नहीं छोडते इसके बारे में वे दोहावली में लिखते हैं -

" सुकृत न सुकृती परि हरइ, कपटनन कपटी बीच । "[१३]

इसप्रकार तुलसीदासजी कहते हैं कि खलों की वृध्दि समाज की गति को रोक सकती है । सन्त निरन्तर सामाजिक विकास का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

तुलसीदासजी यह बताते हैं कि सज्जन और असज्जन में भेद करने के लिए भी ज्ञान की आवश्यकता होती है । वे सज्जन और असज्जन के उदाहरण देते हुए कहते हैं -

" बन्दऊँ संत असज्जन चरना, दुख प्रद उभय बीच कुछ बरना ।
बिछुरत एक प्रान हरि लेही, मिलत एक दारुन दुख देही ।।"
उपजहिं एक संग जलमाही, जलज जोंक जिमि गुन बिलगहि ।
सुधा, सुरा सम साधु-असाधु जनक एक जग जलधि अगाधू ।।"[१४]

तुलसीदासजी कहते हैं, " संत का बिछुडन दु:खदायी होता है और असज्जन का मिलना दु:खदायी होता है । फिर भी एक संत है और दूसरा असंत ।"

तुलसीदासजी लिखते हैं, " सांसारिक आदर और निरादरसे अप्रभावित रहनेवाले व्यक्ति को अपने कार्यों के औचित्य पर पूर्ण विश्वास होना चाहिये । यदि किसी ऐसे व्यक्ति का काम सही नहीं है, तो दूसरों की निन्दा और बिरादर से अप्रभावित रहना उसका गुण नहीं, अवगुण हो जायेगा । वह सामाजिक हित के बजाय अहित करने लगेगा । " इसलिये महात्मा तुलसीदासजी संतों के गुणों की पहचान को आवश्यक मानते हैं ।

तुलसीदासजी के मतानुसार बुध्दि, कीर्ति सद्गति तथा भलाई सब संत संगति से प्राप्त होते हैं, अन्य किसी उपाय से नहीं । यह सब तुलसीदासजी ने अपने समकालीन समाज के अनुरूप ही कहा था ।

तुलसीदासजी कहते हैं, " संसार में तीर्थाटन करते हुए अपनी संगति से समाज को सुशिक्षित बनायें, उनमें अच्छे समाज के लिए उचित गुण निर्माण करें और रामभक्ति के पावन संदेश द्वारा उनमें परोपकार की भावना निर्माण करने का कार्य करें।" इसीलिए वे कहते हैं -

" बिनु सत संग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम पद होय व दृढ अनुराग ॥"[६५]

इसप्रकार सगुण राम का पावन स्वरूप जिन्हें अच्छा नहीं लगा वे मानस से कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकेंगे।

तुलसीदासजी कहते हैं, " असज्जन भी अच्छी संगति पाकर भले काम करने लगते हैं। जैसे घर के तोता-मैना अच्छी संगति में राम-नाम कहना सीख लेते हैं और बुरी संगति में गाली देना सीखते हैं।"

डॉ. सूर्यनारायण भट्टजी के मतानुसार - " इस संसार में सन्त ही गुणों और अवगुणों को पृथक करके गुणों को धारण करते हैं और दोषों को त्याग देते हैं।"[६६]

इसप्रकार तुलसीदासजी कहते हैं, " जब तक मनुष्य निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर अपना ध्येय नहीं बनाता, तब तक उसे वास्तविक सामाजिक सत्य नहीं दिखलाई पडेगा।"

तुलसीदासजी पाखण्डी पुजारियों, सम्प्रदाय वादियों विभिन्न सम्प्रदायों के मठाधीशों को संत नहीं मानते। उन्होंने देखा है कि सभी धर्म दूषित वातावरण से घिर कर पतित हो गये हैं। नये दूषित धार्मिक विचारों ने पुराने विचारों का स्थान ले लिया है। इन नये विचारों के आधार पर अपनी बुद्धि के अनुसार नये नये पंथ निकाले जाते हैं। जिनका वास्तविक धर्म मानव सेवा नहीं है।

पथ-प्रवर्तक अपनी विद्वत्ता एवं श्रेष्ठता के दम्भ में नये पंथों की रचना करते हैं। इसीलिए तुलसी ने संतों को वन्दनीय एवं अनुकरणीय बनाया है। वे किसी धर्म-विशेष या पंथ के व्यक्ति न होकर सारे मानव-समाज की अनुपम सामाजिक कृति है। वे समाज को पतन से रोकने में सतत प्रयत्नशील रहते हैं।

तुलसीदासजी ने जीवन में देखा था कि सज्जन व्यक्ति से भी गलती हो जाती है। कर्म, स्वभाव और काल के प्रभाव से प्रकृतिवश उससे गलत काम चाहे-अनचाहे हो सकते हैं, किन्तु रामभक्त ऐसी गलती हो जाने पर तुरन्त स्वयं को सुधार लेते हैं। वे अपने दोषों पर काबू पाकर फिर अच्छे आचरण प्राप्त कर लेते हैं। इसी कारण उन्हें संसार में यश मिलता है, किन्तु असज्जन अच्छी संगति पाकर अच्छे काम तो करता है, पर उसका मलिन स्वभाव साथ नहीं छोडता। अत: सत् संगति से अलग होकर वह पुन: मलिन हो जाता है। जैसे -

" खलउ करहि भल पाइ सुसंगू मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू ।। "[१७]

इसलिए तुलसीदासजी कहते हैं, " अपने को सुधारने का मौका हर एक को मिलना चाहिए ताकि समाज बुराई की ओर नहीं, अच्छाई की ओर बढे।

तुलसीदासजी ने संतों को भी जीवन-निर्वाह के लिए जीवनोपयोगी वस्तुओं की आवश्यकता किसी विशिष्ट सीमा तक अनिवार्य मानी है। इससे कोई प्राणी बच नहीं सकता। प्रत्येक प्राणी प्रतिकूल परिस्थिति में भी जीवन के लिए सुख चाहता है। कष्टों में पडा व्यक्ति बुध्दि नहीं प्राप्त कर जाता और बिना बुध्दि की स्थिरता से उससे कोई महत्वपूर्ण कार्य की आशा नहीं की जा सकती। इसप्रकार सन्त भी मनुष्य ही है यदि उसका जीवन कष्टमय बना दिया जायेगा तो वह अपने स्तर से गिर जाता है।

जब तक समाज के आर्थिक सम्बन्ध ऐसे नहीं हो जाते कि जिससे सद्गुणों का पोषण और जन-हित को बढावा मिले, तब तक समाज से कुछ भी अच्छा पैदा नहीं होगा ।

तुलसीदासजी कहते हैं, " धर्मवान और पुण्यात्मा पुरूषों के पास सुख स्वभावत: पहुँच जाता है, जैसे नदियाँ सागरमें स्वयं जाकर मिलती हैं, यद्यपि सागर की उनके आ मिलने की कामना नहीं रहती । उसी प्रकार धर्मशील व्यक्तियों को सुख स्वभावत: मिलता है । उनको सुख के पीछे नहीं भागना पडता ।" इस प्रकार तुलसीदासजी चाहते हैं कि समाज धर्मशील एवं सुखी होना चाहिए तभी उसकी प्रगती हो सकती है ।

तुलसीदासजी सबसे बडा धर्म परोपकार बतलाते हैं । कठिन से कठिन दु:ख सहकर परोपकार में लाने की वे शिक्षा देते हैं । परोपकारी पुरूषों के बारेमें वे कहते हैं, - " परोपकारी पुरूष सन्तों का आचरण करता हुआ जीविकार्जन कर सके । दृष्टको अपने धन द्वारा दूसरों को दबाने का अवसर न मिले । "

तुलसीदासजी ने समाज के आर्थिक नियमों का सही स्वरूप उस युग में न प्राप्त किया हो, किन्तु वे सुखी, समाज के निर्माण में या मनुष्यों के सही आचरण के निर्माण में आर्थिक व्यवस्था को नगण्य नहीं मानते थे । वे जानते थे कि यदि आर्थिक व्यवस्था दूषित होगी तो मनुष्य के सारे गुण पैसों के लिए बिकते रहेंगे ।

उन्होंने कलियुग वर्णन में लिखा है - " सो

" सोइ सयान जो परधन हारी जो कर दम्भ सो बड आचारी ।
जो कह झूठ मस खरी जाना, कलियुग सोइ गुनवंत ब खाना ।।"[१८]

संत का एकमात्र स्वार्थ परोपकार करने में है, जिससे सारा समाजसुधर जाये और समाज में समता एवं सुख की प्राप्ति हो जायेगी । तुलसीदासजी कहते हैं, ` मनुष्य पापों से प्रीति करने लगा है । `

` आज यह दशा, हमारे समाज की हो रही है, जिसमें संत ढूंढने से भी नहीं मिलते । संत संगति को तो मूर्खता की बात समझी जा रही है । केवल मुनाफा कमाना ही आज का गुण समझा जाता है । समाज धर्मों का आदर करता है, ज्ञान, सदाचार और सद्गुणों का नहीं । दुसरों का हित सोचना बेवकूफी की बात समझी जाने लगी है । `

निष्कर्ष :

तुलसीदासजी ने ` रामचरितमानस ` में संत सज्जन एवं साधु चरित्र को प्रशंसात्मक रूप में वर्णित किया है । उनका चरित्र मानव-हित का पोषण करनेवाला है । उन्होंने संत के साथ-साथ दुष्टों के चरित्रका वर्णन भी बडी स्पष्टता से किया है, जो समाज के लिए अभिशाप मात्र है । तुलसीदासजी अपने समय के समाज में व्याप्त बुराइयों से दु:खी थे और वे चाहते थे कि उन बुराइयों को समाज से निकाल कर अच्छे लोगों का समाज निर्माण हो जाये ।

तुलसीदासजी ने समाज की धार्मिक भावना के लिए सन्तों एवं ईश्वर भक्तों के प्रति जन साधारण के आदर को सहायक बनाया है । यदि सन्तों और ईश्वर भक्तों की समाज सेवा को ही अपना लक्ष्य बना ले तो जनता की चारित्रिक और वैचारिक गिरावट को रोककर वे उन्हें समाज सेवी सत्पथों पर ला सकते हैं । तुलसीदासजी ने इस संवाद में सन्तों को सद्गुणों से और ज्ञान से परिपूर्ण बताया है । तुलसी के राम में सन्तों के सभी लक्षण हमें दिखाई देते हैं । उनके राम

जन-जीवन से दिलचस्पी रखते हैं। वे सन्तों का पोषण और असज्जनों का हनन करनेवाले हैं। वे मनुष्य के प्रेम की पुकार सुननेवाले हैं। अविद्या का नाश और विद्या को बढानेवाले हैं। महात्मा तुलसीदासजी चाहते थे कि ऐसा मानव-समाज बने, जिसमें परहित की भावना गूँजती रहे और कोई दु:खी न हो।

` रामचरितमानस ` के चार संभाषणों की संगति

तुलसीदासजीने अपने ` रामचरितमानस ` के चार संभाषणों द्वारा एकही रामकथा को कहा है। इनमें रामचरित की एकही अविच्छिन्न धारा का प्रवाह है। इस प्रवाह को गोस्वामीजीने बडे ही सुंदर, सूक्ष्म और कलात्मक ढंग से यत्र-तत्र व्यक्त किया है। चारों संवादों से आती हुअी कथा को थोडी देर के लिए अलग रखकर जब हम श्रोता-वक्ता के प्रश्नोत्तर और उनके आपस के मेल की ओर ध्यान देते हैं, तब तुलसीदासजी का कौशल प्रगट होता है।

` मानस ` खोलने पर हम निर्जीव लेखनी द्वारा लिखे गये निष्प्राण शब्दों को नहीं पढते, तो हम चार वक्ताओं के सजीव शब्द सुनने लगते हैं। उस समय हम अकेले नहीं होते, तो हमें चार-छ: व्यक्तियों का सत्संग प्राप्त हो जाता है। किसी की वाणी सुनते हैं, तो किसी की चेष्टाओं को देखते हैं। कोई कुछ कहता है, तो कोई सिर-हिलाकर हामी भरता है। ऐसे स्फूर्तिमय वातावरण के सुखद चाल में से मन छूटकारा पाने की चेष्टा करे तो कैसे करे ? और कहीं किसी कारणवश इधरउधर भटकने की प्रवृत्ति हुई भी, तो कोई-न-कोई सेचत कर ही देता है। कहीं शिव बोल उठते हैं, तो कहीं याज्ञवल्क्य, कहीं काकभुशुण्डि ध्यान खिंचते हैं, तो कहीं गोस्वामीजी सजग कर देते हैं। रामचरित-मानस का अध्ययन, अध्ययन नहीं है - एक मण्डली में बैठकर रामचरितका कीर्तन करना है, जिसमें व्यक्तित्व का लोप हो जाता हैं। वैयक्तिक मन सामूहिक मन में समा जाता है।

` रामचरितमानस ` में एक साथ ही इन चारों संवादों का संग्रथन किया गया है। इनमें यत्र-तत्र कुछ प्रश्नोत्तर भी ली चलते हैं, फिर भी हम देखते हैं कि इनके कारण न तो कथाप्रवाह में कोई अवरोध आ पाया है और नही कवि के सम्पूर्ण काव्य-कौशल में हमें किसी प्रकार की असंगति दिखाई देती है। वस्तुत:

संवाद शृंखला की विभिन्न कडियों को जोडने में यहाँ कवि ने बडे कौशल एवं दक्षता से काम किया है । मूलकथा के अन्तर्गत उन्होंने केवल सम्बोधनात्मक भरद्वाज पार्वती और गरुड शब्दों से ही काम चलाया है । श्रोताओं के प्रश्न और वक्ताओं द्वारा उसके उत्तर में चार संवाद अपने अपने श्रोता वक्ता की परिस्थिति और प्रवृत्ति का परिचय देते हुये अंत में राममक्ति को अग्रसर होते हैं ।

` रामचरितमानस ` के संवादों द्वारा उन्होंने मक्ति, ज्ञान, और कर्म का पक्ष लेनेवाले तीन व्यक्ति रखे हैं । मक्ति के प्रबल समर्थक काकभुशुण्डि हैं, ज्ञान के समर्थक शिवजी हैं और कर्म के समर्थक याज्ञवल्क्य हैं । इसप्रकार एकही रामकथा की इन तीन तत्वों के आधार पर कहकर तुलसीदासने कर्म, ज्ञान और मक्ति में समन्वय दिखाया है । अंत में राममक्ति में ही सभी संवादों की संगति बिठा दी है ।

राम की यह कथा गोस्वामीजी पाठकों अथवा भक्तजनों से तो कह ही रहे हैं, साथ ही याज्ञवल्क्य-भरद्वाज से शिव-उमा से तथा काकभुशुण्डि-गरुड से कह रहे हैं तुलसीदासजी ने इन संवादों का पारस्परीक अनुक्रम सम्बन्ध, मानव स्वभाव का ज्ञान तथा लौकिक अनुभव और कार्य सफलता इनको बडी विपुणता से संयोजित किया है ।

ये संवाद ` मानस ` के घाट हैं । ये कथावस्तु की सीमा का निर्धारण करते हैं । यों तो हरि अनन्त है, हरिकथा अनन्त है, परन्तु ` मानस ` में जो कथा वर्णित है, उसकी रूपरेखा तथा उसका घटना प्रवाह इन चारों संवादों द्वारा निश्चित कर दिया गया है औरउ उसकी परम्परा निर्धारित कर दी गयी है ।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि तुलसीदासजी ने ` रामचरितमानस ` के इन चार - याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, शिव-पार्वती, काकभुशुण्डि-गरुड और तुलसी और संत - संवाद रूपी घाटों की योजना की है । ये घाट क्रमशः कर्म, ज्ञान, भक्ति और रामनाम के हैं । तुलसीदासजी के मत के अनुसार इनमें से किसी का भी अनुसरण करके कोई भी रामकथा का अधिकारी बन सकता है ।

संदर्भ सूची

१) रामचरितमानस
हनुमान प्रसाद पोद्दार
गीता प्रेस, गोरखपुर
१३ संस्करण, संवत २०४१

२) वही
७। १२४,४

३) वही

४) हिंदी के प्रतिनिधि कवि
डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना
पृ. २३०
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

५) वैराग्य संदीपनी
हनुमान प्रसाद पोद्दार
गीता प्रेस, गोरखपुर
९ संस्करण २०३० संवत

६) रामचरितमानस
हनुमान प्रसाद पोद्दार
गीता प्रेस, गोरखपुर
१३ वा संस्करण २०४१ संवत

७) वही
७। ४०,१

८) वही

९) तुलसी काव्य में धर्म और आचरण का स्वरूप
डॉ. चरण सखी शर्मा
पृ. १६३

१०) वैराग्य संदीपनी
हनुमान प्रसाद पोद्दार
गीता प्रेस, गोरखपुर
९ वा संस्करण, २०४१ संवत

११) रामचरितमानस
हनुमान प्रसाद पोद्दार
१।३ क
गीता प्रेस, गोरखपुर
१३ वा संस्करण २०४१ संवत

१२) वैराग्य संदीपनी
हनुमान प्रसाद पोद्दार
गीता प्रेस, गोरखपुर
९ वा संस्करण २०३० संवत

१३) दोहावली
हनुमान प्रसाद पोद्दार
गीता प्रेस, गोरखपुर
२० संस्करण, २०३१ संवत

१४) रामचरितमानस
हनुमान प्रसाद पोद्दार
१।४,१,२,३
गीता प्रेस, गोरखपुर
१३ संस्करण २०४१ संवत

१५) वही

१६) तुलसी और मानवता
सूर्य नारायण भट्ट
ऊर्जा प्रकाशन ६९
नया इलाहाबाद
द्वितीय संस्करण १९८७

१७) रामचरितमानस
हनुमान प्रसाद पोद्दार
गीता प्रेस, गोरखपुर
१३ संस्करण २०४१ संवत

१८) वही